बड़े बांध : भारत का अनुभव

समीक्षक : श्रीपाद धर्माधिकारी

यह आम धारणा है कि भाखरा नांगल जैसी बांधों की बड़ी परियोजनाओं ने भारत को खाद्यान्न संकट से उबारा है। कुछ दशकों पहले हमें अमरीका से (पीएल 480 के तहत) अनाज स्वीकार करना पड़ता था लेकिन आज हम उस अपमानजनक स्थिति से उबरकर स्वावलम्बी हो गए हैं। प्रचलित सोच के अनुसार हमने यह आत्मसम्मान फिर से पाया है तो इन्हीं बड़े बांधों की बदौलत। इस परिप्रेक्ष्य में अगर कोई हमसे कहे की खाद्यान्न में हुई वृद्धि में बड़े बांधों का योगदान मात्र 10 प्रतिशत से भी कम है, तो शायद हम विश्वास नहीं करेंगे।

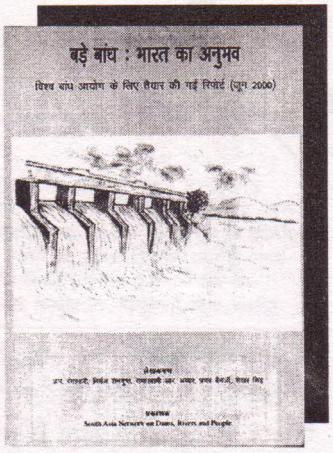

लेखकगण : आर. रंगाचारी, निर्मल सेनगुप्ता, रामास्वामी आर. अय्यर, प्रणव बैनर्जी, शेखर सिंह
अनुवाद : सुशील जोशी
प्रकाशक : साउथ एशिया नेटवर्क ऑन डैम्स, रिवर्स एण्ड पीपुल : नई दिल्ली, मई 2001
पृष्ठ : 268
न्यूनतम सहयोग राशि : 100 रु.

लेकिन यह एक तथ्य है। हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट *बड़े बांध : भारत का अनुभव* बड़े बांधों के संदर्भ में कई आम धारणाओं को ध्वस्त करती है तथा कई चौंकाने वाले तथ्यों को सामने लाती है। बड़े बांधों को लेकर हाल में प्रकाशित दस्तावेजों में यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह रिपोर्ट विश्व बांध आयोग के लिए जून, 2000 में तैयार की गई थी। मूल अंग्रेज़ी रिपोर्ट का हिन्दी अनुवाद मई 2001 में प्रकाशित किया गया है।

विश्व बांध आयोग का गठन अपने आप में एक महत्वपूर्ण और अनोखी प्रक्रिया रही है। 1998 में विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संवर्धन संगठन की अगुवाई से इस आयोग की स्थापना हुई। आयोग का उद्देश्य विश्वभर के बड़े बांधों के अनुभवों का अध्ययन करना तथा बड़े बांधों की 'विकास प्रभाविता' का आकलन करना था। आयोग की विशेषता यह थी कि इसके सदस्य बड़े बांधों के विवाद से जुड़े हर पक्ष से सम्बद्ध थे। कुछ सदस्य बांध बनाने में लगे थे, तो कुछ बड़े बांधों के कड़े आलोचक थे। इसके बावजूद उल्लेखनीय बात यह है कि नवंबर 2000 में आयोग ने सर्वसम्मति से अपनी रिपोर्ट जारी की।

विश्व बांध आयोग ने बड़े बांधों के अनुभवों की और उनके प्रतिकूल/अनुकूल प्रभावों की विश्वव्यापी समीक्षा के तहत अनेक अध्ययन करवाए। कई देशों में कोई एक बांध या नदी घाटी चुनी गई। लेकिन भारत में बने बड़े बांधों की संख्या और उन पर चल रहे विवादों की गंभीरता को देखते हुए आयोग ने सम्पूर्ण देश के बांधों के अनुभवों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण समझा। *बड़े बांध : भारत का अनुभव* इसी अध्ययन का नतीजा है।

विश्व बांध आयोग की ही तरह इस रिपोर्ट की प्रक्रिया भी अनूठी रही है। यह रिपोर्ट पांच शोधकर्ताओं के समूह द्वारा तैयार की गई है। ये शोधकर्ता बड़े बांधों के विवाद के विविध पहलुओं से जुड़े रहे हैं। एक शोधकर्ता भारत सरकार के केन्द्रीय जल आयोग के सदस्य रह चुके हैं (श्री आर. रंगाचारी); एक भारत सरकार के जल संसाधन मंत्रालय के सचिव रहे हैं (श्री रामास्वामी आर. अय्यर); तीसरे जल नियोजन, देशज सिंचाई तंत्रों आदि पर अनुसंधान करते हैं (श्री निर्मल सेनगुप्ता); चौथे पर्यावरणविद् हैं (श्री शेखर सिंह) और पांचवें व्यक्ति अनुसंधानकर्ता हैं तथा केन्द्रीय जल आयोग व सिंचाई विभाग के अधिकारियों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करते हैं (श्री प्रगव बैनर्जी)। लेखकों के तजुर्बे तथा कार्यों की विविधता इस रिपोर्ट की एक बड़ी ताकत है।

भारत में तकरीबन 4200 बड़े बांध बन चुके हैं या

निर्माणाधीन हैं। बड़े बांध बनाने वाले पहले 10 देशों में भारत की गणना होती है। इसके बावजूद आज तक देश में बड़े बांधों के अनुभवों पर समग्र अध्ययन नहीं हुआ है। यह रिपोर्ट इस कमी को पूरी करने की ओर एक सार्थक और महत्वपूर्ण कदम है।

इस रिपोर्ट के ज़रिए कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं, कई महत्वपूर्ण जानकारियां हासिल हुई हैं और बड़े बांधों को लेकर होने वाले विवाद के विविध आयामों पर नई रोशनी मिली है। यह रिपोर्ट सभी लेखकों द्वारा लिखी हुई संयुक्त रिपोर्ट नहीं है बल्कि विभिन्न पहलुओं पर अलग-अलग सदस्यों द्वारा लिखित पर्चों का संकलन है। अलबत्ता, इसका आखिरी अध्याय *आम सहमति के कुछ निष्कर्ष* सर्वसम्मति से लिखा गया है। हम सबसे पहले इन्हीं आम सहमति के कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर नज़र डालते हैं। निम्नलिखित निष्कर्ष हमने रिपोर्ट से उद्धृत किए हैं :

..... सिंचाई क्षेत्र राजकोष पर एक भारी बोझ बन गया है और 1993-94 में वार्षिक संचालन घाटा 3000 करोड़ रुपए से अधिक हो गया है।

बड़े व मध्यम सिंचाई परियोजना के ज़रिए सिंचाई क्षमता निर्माण की पूंजीगत लागत में तेज़ वृद्धि रिकॉर्ड की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951-56 से 1990-92.... के बीच यह लागत (तत्कालीन कीमतों पर) 1200 रुपए प्रति हेक्टेयर से बढ़कर 66,570 रुपए प्रति हेक्टेयर हो गई।

..... (क) मध्यम व बड़ी परियोजनाओं में वास्तविक सिंचित क्षेत्र प्रस्तावित से काफी कम रहे हैं और यह खाई बढ़ती जा रही है। (ख) उपज के वास्तविक आंकड़े प्रायः अनुमानित उपज से काफी कम होते हैं..... (घ) कीमतों के बारे में मान्यताओं में, अतिरिक्त आशावाद के प्रमाण हैं।

सिंचाई व पनबिजली दोनों परियोजनाओं में लागतें प्रायः कम करके बताई जाती हैं और लाभ बढ़ा-चढ़ाकर ताकि ज़रूरी लाभ-लागत अनुपात प्राप्त हो जाए।

..... यदि सिर्फ सिंचाई के लाभों पर ध्यान दिया जाए तो बड़ी व मध्यम परियोजनाएं 90 के दशक के प्रारंभ तक अव्यावहारिक हो चुकी थीं।

(सभी पृष्ठ 260)

.....अक्सर पर्यावरणीय मंजूरी मिलने से पहले ही राज्य सरकारें निर्माण कार्य शुरू कर देती हैं। कुछ मामलों में वे ज़रूरी आकलन पूरा करने से पहले ही इस शर्त पर मंजूरी प्राप्त करने में सफल हो जाती हैं कि आकलन का काम एक निर्धारित तारीख तक पूरा हो जाएगा और सुरक्षा के उपाय निर्माण कार्य के साथ-साथ क्रियान्वित किए जाएंगे।

.....एक बार मंजूरी मिल जाने के बाद उसमें निर्धारित शर्तों को अनदेखा कर दिया जाता है।

(पृष्ठ 262-263)

बड़े बांधों के नियोजन व आकलन की प्रक्रिया में यह शामिल होना चाहिए कि उन विभिन्न विकल्पों और पूरक विधियों पर विचार किया जाए..... परिणाम के रूप में जिस विकल्प को चुना जाए वह सिर्फ उपयुक्त ही नहीं, यथेष्ट भी होना चाहिए।

(पृष्ठ 265)

बड़े बांधों ने सिंचित खेती के विकास, बेहतर उत्पादकता और खाद्यान्न उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने पनबिजली में भी योगदान दिया है।... किन्तु उनके कई प्रतिकूल प्रभाव भी हुए हैं, जिनमें सामाजिक व पर्यावरणीय प्रभाव शामिल हैं। बड़े बांधों के कई प्रतिकूल प्रभाव ऐसे हैं जिनकी न तो रोकथाम की जा सकती है और न ही उपचार किया जा सकता है।

बड़े बांधों के प्रतिकूल प्रभावों की रोकथाम व शमन की वित्तीय व आर्थिक लागतों की गणना करने पर निश्चित रूप से उनकी वित्तीय व आर्थिक व्यवहार्यता पर असर होगा।

.....यदि 1990 के दशक की कुछ बड़ी बांध परियोजनाओं की सकल लागत में मात्र कुछ प्रतिकूल प्रभावों की रोकथाम व शमन की लागत जोड़ दी जाती है तो वे आर्थिक रूप से अनुपयुक्त हो जाते हैं।

इसके अलावा, 1980 के दशक के आरम्भ से बड़ी व मध्यम परियोजनाओं से प्रति हेक्टेयर सिंचाई की निवेश लागत इतनी बढ़ गई हैं कि औसतन ये परियोजनाएं वित्तीय रू प से और आर्थिक रूप से भी अव्यावहारिक हो गई हैं।

....बड़े बांधों की अधिकांश लागत व लाभों का वितरण सामाजिक-आर्थिक गैर-बराबरियों को बढ़ाता है।

(पृष्ठ 268)

इस रिपोर्ट के अलग-अलग अध्यायों में बांध आदि के विभिन्न पहलुओं पर गहन और विस्तृत चर्चा की गई है। यहां एक बात स्पष्ट करना ज़रूरी है। हर अध्याय से अन्य लेखक सहमत हों यह जरूरी नहीं है। पर यह भी ज़रूरी नहीं कि वे उनकी हर बात से असहमत हों।

पहले दो अध्यायों में भारत में बड़े बांधों के इतिहास व विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है। इससे हमें कुछ बुनियादी आंकड़े उपलब्ध होते हैं। साथ ही कुछ रोचक तथ्य भी। जैसे, हमें पता चलता है कि नेहरू जैसे बड़े बांधों के समर्थक भी बाद के वर्षों में बड़े बांधों की हिमायत में कहीं अधिक सतर्क हो गए थे। अध्याय दो में सेनगुप्ता इस बात को उजागर करते हैं कि कैसे विदेशी शिक्षा और टेक्नोलॉजी की चकाचौंध के कारण हमारे इंजीनियरों ने देशज और पारम्परिक ज्ञान को हाशिए पर बिठा दिया था।

इसी अध्याय में आंकड़ों की छानबीन के ज़रिए सेनगुप्ता स्पष्ट करते हैं कि खाद्यान्न उत्पादन में हुई वृद्धि में बड़े बांधों का सीमान्त योगदान 10 प्रतिशत से भी कम रहा है। सही है कि एक बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह आंकड़ा कम नहीं है, लेकिन बड़े बांधों के पक्ष में जिस तरह बढ़ा-चढ़ाकर दावे किए जाते हैं, उतना असाधारण भी नहीं है यह। आम धारणा के विरुद्ध जाता यह तथ्य बड़े बांधों के लाभों के दावों को सीधे आकाश से उठाकर धरातल पर ला खड़ा कर देता है।

तीसरे अध्याय में श्री अय्यर बड़े बांधों को लेकर कानून, नीतियों, संस्थाओं व प्रक्रियाओं का ताना-बाना प्रस्तुत करते हैं। इसमें स्पष्ट रूप से ढांचागत खामियां सामने आती हैं, जैसे समग्रतापूर्ण नियोजन का अभाव; विस्थापन/पुनर्वास की राष्ट्रीय नीति का अभाव आदि।

चौथे अध्याय में श्री बैनर्जी बांधों के वित्तीय/आर्थिक पक्ष व वितरण सम्बंधी विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय है क्योंकि बांधों के पर्यावरणीय तथा सामाजिक असर पर तो काफी चर्चा होती रहती है, लेकिन इस पहलू की सच्चाई कभी-कभार ही सामने आती है। इसके कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष आम सहमति के अध्याय में दोहराए गए हैं और ऊपर दिए जा चुके हैं।

पांचवें अध्याय में जाने माने पर्यावरणविद् शेखर सिंह तथा उनका समूह बड़े बांधों के पर्यावरणीय तथा सामाजिक असर पर अत्यन्त विस्तृत चर्चा करते हैं। हालांकि सार्वजनिक चर्चाओं में यह विषय सबसे अधिक आता है, फिर भी सिंह और उनके साथी कई नए पहलू और तथ्य सामने लाए हैं। सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि भारत में बड़े बांधों से आज तक तकरीबन 560 लाख लोग विस्थापित हो चुके हैं। अलबत्ता, यह भी कहते हैं कि सरकार द्वारा आंकड़े उपलब्ध कराने में झिझक के कारण इसे अंतिम आंकड़ा नहीं बल्कि सर्वोत्तम अनुमान ही कहा जा सकता है। इसमें ज़्यादा से ज़्यादा 25 प्रतिशत का ही फेरबदल होगा ऐसा उनका मानना है। इन आंकड़ों में वे लोग शामिल नहीं हैं जो बड़े बांधों से डूब के अलावा अन्य तरीके से विस्थापित होते हैं - मसलन नहर, कर्मचारियों की कॉलोनी, क्षतिपूर्ति वनीकरण, व्यवसायजन्य आदि द्वारा विस्थापन; यह संख्या विशाल है।

छठे अध्याय में सेनगुप्ता विकल्पों की विस्तृत चर्चा करते हैं। नदी घाटी परियोजनाओं के नियोजन की चर्चा करते हुए सेनगुप्ता बताते हैं कि विकल्पों को दोयम स्थान मिला हुआ है और बड़े बांधों का तवज्जो पाना इस प्रक्रिया में अंतर्निहित है। अर्थात, सभी विकल्पों को समान अवसर नहीं मिलते।

विकल्पों की चर्चा को सेनगुप्ता दो हिस्सों में बांटते हैं - (बेहतर) प्रबंधन और अन्य/वैकल्पिक टेक्नॉलॉजी। ऊर्जा की चर्चा करते हुए वे बताते हैं कि आपूर्ति के प्रबंधन में सुधार तथा बेहतर कार्यक्षमता के उपकरणों का उपयोग जैसे कदम हज़ारों मेगावॉट नए उत्पादन के समकक्ष होंगे। मसलन वे बताते हैं कि संयंत्र उपयोग दर (प्लांट लोड फैक्टर) आज 64 प्रतिशत है। इसमें और बहुत सुधार की गुंजाइश है। हर 1 प्रतिशत की वृद्धि 650 मेगावॉट बिजली उत्पादन क्षमता के बराबर है। कृषि क्षेत्र में बिजली का अगर कार्यक्षम उपयोग हो, तो वर्तमान उपयोग से आधे की ही ज़रूरत रह जाएगी (कृषि पर कोई प्रतिकूल असर हुए बगैर) और यह 15,000 मेगावॉट नई उत्पादन क्षमता के बराबर है।

वे बताते हैं कि फिलवक्त सरकारी आंकड़ों के अनुसार सिंचाई क्षेत्र में बड़ी व मझौली परियोजनाओं से निर्मित सिंचाई क्षमता के 25 प्रतिशत का भी उपयोग नहीं हो रहा है। इस क्षमता का तथा लघु सिंचाई की निर्मित क्षमता का पूरा उपयोग हो जाए तो करीबन 90

लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि को सींचा जा सकेगा। यह क्षमता 5 सरदार सरोवर बांधों के बराबर है। सनद रहे कि ये सारी परियोजनाएं वे हैं जिनकी सामाजिक, पर्यावरणीय कीमत हम दे चुके हैं।

वे नई टेक्नॉलॉजी की भी विस्तृत चर्चा करते हैं। ऊर्जा की बात करते हुए वे कहते हैं कि केवल तीन टेक्नॉलॉजी - पवन बिजली, जैव पदार्थ पर आधारित बिजली, नगरीय कचरे से बिजली - जो आज व्यापारिक और व्यावहारिक स्तर पर पहुंच चुकी है या इसके बहुत करीब है, की सम्भावना कुछ 65,000 मेगावॉट आंकी गई है। सिंचाई और पानी के लिए तो वर्षा जल दोहन, वॉटरशेड प्रबंधन आदि टेक्नॉलॉजी का खज़ाना हमारे पास है ही। यह व्यापक स्तर पर, हर स्थान पर उपयोग में लाया जा सकता है। ये सारे सशक्त विकल्प हैं।

साथ ही, सेनगुप्ता ने विकल्पों के बारे में प्रचलित कई आम धारणाओं को गलत साबित किया है। जैसे नहर व नलकूपों की उत्पादकता वैकल्पिक सिंचाई से अधिक होती है; वैकल्पिक सिंचाई स्रोतों से वर्ष में एक से अधिक फसल नहीं ली जा सकती है; वैकल्पिक प्रणालियां व्यापक स्तर पर और बड़े पैमाने पर उपयोग में नहीं लाई जा सकती हैं; छोटे-छोटे भंडारण अपेक्षाकृत अधिक ज़मीन डुबाते हैं और इनसे वाष्पन का नुकसान अधिक होता है। सेनगुप्ता आंकड़ों व अनुभव की सहायता से इन्हें गलत साबित करते हैं।

सेनगुप्ता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात कहते हैं कि ये सारे विकल्प विकास के प्रति कुछ महत्वाकांक्षी सरोकारों से प्रेरित हैं और विकास के एक भिन्न लक्ष्य की ओर संकेत करते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह रिपोर्ट अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण है। और बड़े बांधों से सम्बंधित विवाद में रुचि रखने वाले सभी लोगों को इस रिपोर्ट को ज़रूर पढ़ना चाहिए। लेखकगणों ने रिपोर्ट तैयार करने में समयावधि कम होने की ओर इशारा किया है। लेकिन इसी अध्ययन को और आगे बढ़ाया जाना बहुत उपयोगी होगा।

आखिर में एक बात कहना ज़रूरी है। भारत सरकार ने औपचारिक तौर पर यह रिपोर्ट पूरी तरह नामंजूर कर दी है। सरकार का कहना है कि उन्होंने जो विस्तृत टिप्पणियां दी थीं, उन्हें अनदेखा किया गया है। यह कहना जायज़ नहीं है। लेखकों ने सभी सम्बंधित सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्ति/संस्थाओं को सहभागिता के कई मौके दिए थे। सभी से टिप्पणियां, जानकारियां आमंत्रित की थीं। रिपोर्ट का प्रारंभिक मसौदा तैयार होने पर उस पर चर्चा हेतु दो बैठकें आयोजित की थीं। इन बैठकों में केन्द्र सरकार शामिल थी। उन्होंने विस्तृत लिखित टिप्पणियां भी भेजी थीं। लेखक कहते हैं कि उन्होंने इन टिप्पणियों पर गौर किया और जो उचित लगा अपनी रिपोर्ट में शामिल किया। क्या स्वीकार करना है और क्या अस्वीकार करना है इसका हक तो रिपोर्ट के लेखकों को ही रहेगा।

लेकिन सरकार की यह प्रतिक्रिया अनपेक्षित नहीं है। सरकार का रवैया हमेशा से ही यही रहा है कि ऐसी स्वतंत्र रिपोर्ट जो इस तरह के निष्कर्षों पर पहुंचती है जो सरकार की धारणाओं के विपरीत हो (या फिर कहें कि सरकार के तथा उससे जुड़े हितों के विपरीत हो) - सरकार इन्हें हमेशा नामंजूर करती रही है। सरदार सरोवर को लेकर विश्व बैंक द्वारा गठित मोर्स कमेटी, स्वयं केन्द्र सरकार द्वारा गठित जयंत पाटिल कमेटी, टिहरी बांध सम्बंधी कई सरकारी कमेटियों के साथ भी ऐसा ही हुआ है।

दरअसल सच्चाई स्वीकारने का खुलापन और हिम्मत सरकार में नहीं है। बड़े बांधों की राजनीति यही रही है। इसीलिए गैर सरकारी संगठनों का, अनुसंधानकर्ताओं का, पत्रकारों का, आम जनता का दायित्व बढ़ जाता है।

बड़े बांध : भारत का अनुभव जैसी रिपोर्ट का अध्ययन करके उसमें सामने आए निष्कर्षों का व्यापक प्रचार करना तथा सरकार को इनके प्रति जवाबदेह बनाने के प्रयास करना सभी के लिए ज़रूरी है। ***(स्रोत फीचर्स)***